ध्यान दें:

2

सांख्य दर्शन में प्रकृति पुरुष गुण विचार

सांख्य दर्शन भारतीय छः दर्शनों में सबसे प्राचीनतम दर्शन है। जिसमें पच्चीस तत्वों को स्वीकार किया गया है। जिनमें मुख्य रूप से दो ही तत्व हैं वो है प्रकृति तथा पुरुष। प्रकृति से ही विकृति के रूप में अन्य तेईस तत्वों का निर्माण होता है। 'प्रकृति और पुरुष भिन्न होते हैं' इस प्रकार का विवेक होने पर ही मनुष्य को मोक्ष की प्राप्ति होती है। लेकिन प्रकृति और पुरुष के विवेक के ज्ञान के लिए प्रकृति और पुरुष का स्वरूप अच्छे से जानन चाहिए उसके द्वारा ही यह प्रकृति पुरुष से भिन्न है। तथा पुरुष प्रकृति से भिन्न है इस प्रकार का विवेक उत्पन्न होता है। प्रकृति और पुरुष के स्वरूप के ज्ञान के बिना विवेक ख्याति हो ही नहीं सकती है इसलिए प्रकृति और पुरुष का स्वरूप तथा उससे संबंधित विषयों का चिन्तन करना चाहिए।

उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन से आप सक्षम होंगे;

- सांख्य दर्शन में पुरुष बहुत्व को क्यों स्वीकार किया गया है, यह ज्ञान में;
- सांख्य दर्शन में प्रकृति क्या है इसका विस्तार से परिचय प्राप्त कर पाने में;
- किसलिए प्रधान तत्वों को स्वीकार किया गया है, इसका ज्ञान करने में;
- सत्व रज तथा तमोगुण का विस्तार से परिचय प्राप्त कर पाने में;
- सांख्य शास्त्र में पुरुष के चेतन होने पर भी अकर्तृत्व तथा बुद्धि का अचेतन होने पर भी कर्तृत्व कैसे है? यह स्पष्ट करने में;
- प्रधान किस प्रकार जगत का कर्ता है इसका बोध कर पाने में;
- प्रकृति की प्रवृत्ति किसलिए है इसका ज्ञान प्राप्त करने में;

पाठ-2

सांख्य दर्शन में प्रकृति पुरुष गुण विचार

ध्यान दें:

2.1) पुरुषबहुत्व

पुरुष के अस्तित्व का प्रतिपादन करते हुए, वह पुरुष सभी शरीरों में एक है अथवा अनेक इसका विचार सांख्यकारिका में किया गया है। पुरुष एक है अथवा अनेक विषय में दर्शन सम्प्रदाय में विभिन्न मतभेद प्राप्त होते हैं। वहां पर सांख्य सम्प्रदाय में पुरुषबहुत्व है यह स्वीकार किया गया है। इस लिए सांख्य दर्शन वालों को बहुपुरुष आदि कहा गया है। वो क्यों पुरुष का बहुत्व स्वीकार करते हैं? इस विषय में बहुत सारी युक्तियाँ हैं। सांख्यकारिका में कहा गया है कि "पुरुष बहुत्वं सिद्धम्"। किस प्रकार से बहुपुरुषत्व सिद्ध होता है? "लक्षणप्रमाणाभ्यं वस्तुसिद्धिः" इस वचन का अनुकरण करके कारिका में तीन हेतु बताए गये हैं। वे हैं (क) जननमरणकरणानां प्रतिनियामात् (जन्म तथा मरण के नियम से) (ख) अयुगपत् प्रवृत्तेः, (एक साथ प्रवृत्ति नहीं होने के कारण), (ग) त्रैगुण्यविपर्ययात्, (तीनों गुणों के विपर्यय से)। इसलिए सांख्यकारिका में कहा गया है।

जन्ममरणकरणानां प्रतिनियमाद् अयुगपत्प्रवृत्तेश्च।
पुरुषबहुत्वं सिद्धं त्रैगुण्यविपर्ययाच्चैव॥ इति। [सांख्यकारिका-१८]

2.1.1) जन्म मरण के प्रतिनियम

जन्म मृत्यु तथा अन्तः करणादि तेरह कारणों से पुरुष बहुत प्रकार के होते हैं। अलग-अलग पुरुष के लिए अलग-अलग नियम होते हैं। प्रत्येक पुरुष के जन्म-मरण तथा अन्तादिकरण के नाम भी अलग-अलग होते हैं। अब प्रश्न करते हैं कि- पुरुष के अनादि अनन्त तथा उत्पत्ति व विनाश के नहीं होने से किस प्रकार जन्म मृत्यु आदि होते हैं। तब कहते हैं कि- निकाय विशिष्ट अपूर्व साथ तथा देह, इन्द्रिय, मन, अहङ्कार, बुद्धि आदि के साथ अभिसम्बन्ध होने के कारण पुरुष का जन्म होता है। निकाय पद से यहाँ पर देह, इन्द्रिय, मन तथा अहङ्कार आदि का मिला हुआ एक प्रयोजन साधकत्व कहा गया है। अभिसम्बन्ध इस पद से यहाँ पर अभिमान रूप सम्बन्ध बताया गया है न कि संयोगादि रूप। देह तथा इन्द्रियों के साथ मिलितावस्था में निकाय तथा संघात को स्वयं में मानने वाले पुरुष के साथ निकाय का भोक्ता और भोग्य रूप में सम्बन्ध होता है। इसलिए निकाय (देह, इन्द्रिय, मन तथा अहङ्कार) के बहुत होने के कारण पुरुष बहुत्व भी सिद्ध होता है। मृत्यु से तात्पर्य है पुरुष के द्वारा स्वीकृत देह आदि का परित्याग करना तथा भोक्तृ और भोग्य सम्बन्ध का विनाश होना। न कि आत्मा का विनाश होना। आत्मा कूटस्थ तथा नित्य होने के कारण अविनाशी है। सांख्य योग में बाल्यावस्था, युवावस्था तथा देह में भिन्नता नहीं बताई गई है, इससे उनका अपूर्वत्व भी स्वीकृत नहीं होता है। केवल मातृगर्भस्थ देह का ही अपूर्वत्व बताया गया है। इस प्रकार जन्म-मरण आदि कारणों की व्यवस्था सभी शरीरों में एक पुरुष की एक साथ नहीं हो सकती। अर्थात् यदि पुरुष एक ही होता है तो एक के जन्म के साथ सभी का जन्म होना चाहिए तथा और एक के मरण के साथ सभी का ही मरण होना चाहिए, एक अन्धा होने पर सभी अन्धे होने चाहिए तथा एक का मन व्याकुल होने पर सभी का मन व्याकुल होना चाहिए, ऐसे तो यहाँ अव्यवस्था हो जाती। इसलिए प्रत्येक शरीर में पुरुष भिन्न-भिन्न होने के कारण प्रत्येक पुरुष का अलग-अलग जन्म मरण तथा इन्द्रियों की भिन्नता सिद्ध होती है।

अब पुनः प्रश्न करते हैं कि पुरुष बहुत्व स्वीकार करने का कोई प्रयोजन नहीं है पुरुष भी उपाधि भेद से अनेक हो सकता है जैसे आकाशादि अनेक रहते हैं। जैसे उपाधि भेद से हम आकाश का भी घटाकाश तथा पटाकाश इस प्रकार से व्यवहार करते हैं इस प्रकार से यहाँ पर भी विविध देहोपाधिक पुरुष स्वीकार करना चाहिए। तब उत्तर में कहते हैं कि- ऐसा करने पर तो हाथ स्तन आदि उपाधियों के भेद से जन्म तथा मरण के प्रसङ्ग भी समान हो जायेंगे। जैसे किसी का हाथ कट जाने पर उसको

ध्यान दें:

मृत कहा जाता है और न स्तन आने पर युवति हो गई ऐसा कहा जाता है। इसलिए देह भेद से पुरुष भी भिन्न-भिन्न होते हैं यह सिद्ध होता है।

2.1.2) अयुगपत प्रवृत्ति

अयुगपत् प्रवृत्ति के कारण

सभी की एक साथ प्रवृत्ति नहीं होने के कारण पुरुष बहुत्व स्वीकार करना चाहिए, प्रवृत्ति से तात्पर्य है प्रयत्न लक्षणा (एक साथ प्रयत्न) भले ही वह अन्त:करण वाली हो फिर भी गौंण रूप से पुरुष में ही आरोपित होती है। जैसे सेवक की जय उसके प्रभु में आरोपित होती है उसी प्रकार स्व स्वामीभाव सम्बन्ध के कारण से अन्त:करण में स्थित प्रयत्न का भी पुरुष में ही आरोप होता है (अर्थात वह प्रयत्न पुरुष के द्वारा ही किया जाता है) इस प्रकार का प्रयत्न प्रति शरीर के भिन्न होने के कारण पुरुष बहुत्व भी ग्रहण करना चाहिए। यदि पुरुष एक ही स्वीकार किया जाए तो एक शरीर में उसके होते हुए उसे सभी शरीर में एक साथ माना जाना चाहिए, तो फिर सभी शरीर एक साथ चलने चाहिए अत: पुरुष भिन्नता स्वीकार करने पर ऐसा सम्भव नहीं होता है। सभी की यह तो प्रत्यक्ष स्थिति है कि सभी की प्रवृति एक साथ नहीं होती है। अत: सभी का प्रवृत्ति भेद स्वीकार करने पर पुरुषों में भी भिन्नत्व स्वीकार करना चाहिए। इसलिए पुरुष बहुत्व है।

2.1.3) त्रैगुण्यविपर्यय

तीनों गुणों के विपर्यय से भी पुरुष बहुत्व की सिद्धि होती है। सत्व, रज तथा तम ये तीन गुण होते हैं। इन तीनों गुणों को त्रैगुण्य कहा जाता है। त्रैगुण्य का विपर्यय अर्थात् तीनों गुणों का अलग-अलग होना। कुछ प्राणी जितेन्द्रिय तथा सत्वगुण के बाहुल्य वाले होते हैं। कुछ प्राणी रजोगुण के बाहुल्य वाले होते हैं जैसे मनुष्य तथा कुछ प्राणी तमो गुण के बाहुल्य वाले होते हैं जैसे तिर्यग् योनी वाले जीव जन्तु। यदि एक ही पुरुष को स्वीकार करते हैं तो इस प्रकार तीनों गुणों का अलग-अलग भाव सम्भव ही नहीं है। एक पुरुष को स्वीकारने में तो उसी में ही सत्व बाहुल्य, उसी में ही रजो बाहुल्य, तथा उसी में ही तमो बाहुल्य स्वीकार करना चाहिए। यो युक्ति पूर्वक देखा जाए तो एक साथ नहीं हो सकता। बहुत पुरुष स्वीकार करने पर एक में रजो बाहुल्य अन्य में सत्व बाहुल्य व तमो बाहुल्य स्वीकार कर सकते हैं। इसलिए पुरुष बहुत्व स्वीकार करना चाहिए यह सांख्य कारिका में ईश्वरकृष्ण का मत है।

आत्मा को एक मानने पर 'कोई पुरुष बँधा है और कोई पुरुष मुक्त है' इस प्रकार से तो प्रत्येक शरीर में बन्ध तथा मोक्ष की व्यवस्था भी सम्भव नहीं है। इसलिए आत्मा भिन्न ही है। जैसे कणाद् सूत्र में कहा गया है कि 'व्यवस्थातो नाना'। सांख्य सूत्र में भी कहा गया है 'जन्मादिव्यवस्थात:पुरुषबहुत्व'। इस प्रकार एक (पुरुष) में ही जन्म, मरण, सुख तथा दु:ख आदि विभाग नहीं होते हैं। इस प्रकार वह व्यवस्था उत्पन्न ही नहीं होती यदि सभी शरीरों में एक ही पुरुष को मानते तो। इसलिए पुरुषों का नानात्व अङ्गीकृत किया गया है।

2.2) मूलप्रकृति

केवल प्रकृति को ही प्रधान पद से मूल प्रकृति जानना चाहिए। यह अन्य किसी की विकृति नहीं है। अच्छे प्रकार से जो कार्य को उत्पन्न करती है वह प्रकृति कहलाती है। प्रकृति रूप से जो तत्वों को आरम्भ करती है तथा जिससे अन्य तत्व उत्पन्न होते हैं इस प्रकार का जो कारण विशेष वह प्रकृति है। वह मूल प्रकृति ही सत्व रज तथा तमोगुण की साम्यावस्था रूप है। सभी का मूल होने के कारण मूल

ध्यान दें:

प्रकृति भी कहा जाता है। महद् आदि का मूल होने कारण यह प्रधान कहलाती है इसका कोई कारणान्तर नहीं है। मूल प्रकृति का भी कारणान्तर स्वीकार करने पर अनवस्था दोष आ जाता है। जिसके द्वारा जगत् उत्पन्न होता है तथा प्रलय के समय में जिसमें जगत् समा जाता है इसलिए यह सभी से प्रधान है। वह भी मिट्टी तथा सोने की तरह अचेतन में चेतन पुरुष के भोग अपवर्ग आदि साधन के लिए स्वभाव से ही प्रवर्तित होती है न कि किसी के द्वारा प्रवर्तित की जाती है।

2.3) प्रधान सद्भाव में मान

पुरुष के सद्भाव का क्या प्रमाण है यह विषय सांख्य कारिका में विस्तार पूर्वक चर्चित हो चुका है। तथा प्रकृति के सद्भाव का क्या मान है? इस विषय में भी सामान्य विचार किया गया है। सांख्यकारिका में प्रारम्भ में सांख्य सम्मत प्रमाणों का विचार किया गया है। जहाँ पूर्व पक्ष के द्वारा आक्षेप किया गया है कि जैसे आकाश पुष्प, कछुए में रोम, तथा खरगोश के सिंह इनमें प्रत्यक्ष विषय के नहीं होने के कारण मिथ्या सिद्ध होता है। इस संशय के निवारण के लिए प्रधान आदि की सांख्यकारिका में सिद्धि कही गयी है

अतिदूरात् सामीप्यादिन्द्रियघातान्मनोऽनवस्थानात्।
सौक्ष्म्याद्व्यवधानादभिभवात्समानाभिहाराच्च॥ इति। [सांख्यकारिका - 7]

विषय की विद्यमानता सत्य होने पर भी क्यों प्रत्यक्ष के माध्यम से उसे नहीं जाना जा सकता? इसके आठ हेतु सांख्य कारिका में बताए गये है। 1. अधिक दूर होने से, 2. अधिक समीप होने से, 3. इन्द्रियों के सही नहीं होने से, 4. मन के एकाग्र नहीं होने से, 5. अति सूक्ष्म होने से, 6. बीच में व्यवधान होने से, 7. अभिभव से, 8. समानाभिहार (सदृशता के कारण)।

अधिक दूर होने के कारण आकाश में उड़ते हुए पक्षी नहीं दिखाई देते हैं। अधिक पास में होने के कारण आँखों में काजल भी दिखाई नहीं देता है। इन्द्रियघात अर्थात अन्धता तथा बधिरता के कारण अन्धेपन से समीप होता हुआ कुछ भी दिखाई नहीं देता है। मन का अनवस्था में होने के कारण। जैसे कामादि से उपहत मन वाले स्फूर्ति लोक मध्यवर्ती इन्द्रिय सन्निकृष्ट अर्थ को नहीं देखता है। सूक्ष्मता के कारण से इन्द्रिय के पास होते हुए भी परमाणु आदि न देखता है। व्यवधान के कारण जैसे- बीच में भीति (खिड़की) आदि के आ जाने के कारण कुछ भी नहीं दिखाई देता है। अभिभव से तात्पर्य है कि बलवान के द्वारा निर्बल का आच्छादन करना अथवा तिरस्कार करना, जैसे दिन में सूर्य के प्रभाव के कारण ग्रह नक्षत्र आदि नहीं दिखाई देते हैं। समानाभिहार से तात्पर्य है सजातीयों का मिश्रण जिस प्रकार जलाशय में वर्षा के जल को अलग से नहीं देखा जा सकता है। इस प्रकार वस्तु होने पर भी इन कारणों से प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देती है। इसी प्रकार सांख्य तत्वों में प्रधानादि के अनुपलब्ध होने पर कहते हैं कि

सौक्ष्यात्तदनुपलब्धिर्नाभावात् कार्यतस्तदुपलब्धेः।
महदादि तच्च कार्यं प्रकृतिसरूपं विरूपं च॥ इति। [सांख्यकारिका - 8]

प्रधान आदि तत्व अभाव के कारण नहीं अपितु सूक्ष्म होने के कारण दिखाई नहीं देते हैं। अतः अतिसूक्ष्म परिमाण को सूक्ष्म शब्द से पुकारा जाता है। तो कहते हैं कि क्या यहां पर सूक्ष्मता है? नहीं। क्योंकि प्रकृति पुरुष अणुवादि के जैसे सूक्ष्म नहीं है अपितु उन दोनों के विभुत्व होने के कारण (वह दिखाई नहीं देते हैं) इसलिए सर्वव्यापी पदार्थों के लिए सूक्ष्मत्व कथन सही नहीं होता है। प्रश्न करते हैं तो किस प्रकार इनके सूक्ष्मत्व उपस्थापन होगा? तब वाचस्पति मिश्र कहते हैं कि परमाणु आदि में भी सूक्ष्मता के होने के कारण एकाग्रचित्त व्यक्तियों को भी उसकी उपलब्धि नहीं होती है। इसलिए सूक्ष्मता का कोई ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए जिससे अणु वत् परिमाण वाले प्रकृति तथा पुरुष का भी ग्रहण

ध्यान दें:

हो जाए। अणु परिमाण, महत् परिमाण तथा परम महत् परिमाण इस प्रकार से परिमाण तीन प्रकार का होता है। इनमें अणु परिमाण परमाणु का नैयायिकों के मत में मानस आदि के समान होता है। महत् परिमाण पृथ्वी आदि का मूर्त द्रव्यों के समान होता है। जैसा कि कहा गया है "परिछिन्न परिमाणवत्त्वं मूर्तत्वम्"। परम महत् परिमाण पुरुषादि का विमु पदार्थों के समान होता है। विभुत्व से तात्पर्य है कि सभी मूर्त तथा द्रव्यों का संयोग **"सर्वमूर्तद्रव्यसंयोगित्वम्"।** जैसे अणु परिमाण का उद्भूत रूपत्व के अभाव से प्रत्यक्ष नहीं होता है। उसी प्रकार परम महत् का भी परमाणु की ज्यादा गति के कारण प्रत्यक्ष नहीं होता है यही सूक्ष्मत्व का तात्पर्य है। फिर भी सांख्य शास्त्र में पुरुष निर्गुण है इसलिए उसमें परम महत् आदि परमाणों का होना तो असम्भव है? तब यहाँ कहते हैं कि निर्गुण शब्द ही प्रस्तुत क्षेत्र में ज्ञानादि विशेष गुणों के अभाव का बोधक है न कि संख्या परिमाणादि सामान्य गुणों का। इसलिए ही प्रकृति और पुरुष का संयोग स्वीकार करने पर भी पुरुष का निर्गुणत्व व्याहत (नष्ट) नहीं होता है।

इस प्रकार प्रधानादि तत्वों के सूक्ष्म होने के कारण उनकी अनुपलब्धि प्रत्यक्ष के कारण होती है न कि अभाव के कारण। और कार्य से ही जिनकी उपलब्धि होती है। इस कारण से ही प्रधानादियों का असत्त्व सिद्ध होता है। वह कौन-सा कार्य है जिससे प्रधान आदि में सत्व का प्रमाण होता है? तब कहते हैं कि महत् आदि ही उसके कार्य हैं तथा प्रकृति सरूप और विरूप भी। प्रधान का कार्य महत्, महत् का अहंकार, इस परम्परा से पांच महाभूत ग्यारह इन्द्रियाँ आदि प्रधान के कार्यभूत है। इनके कार्यों का कारण किसी सद् उपादान के द्वारा होता है, इस कारण से प्रधान के सत्व को स्वीकार करना चाहिए। कार्य ही कारण सजातीय कारण से भिन्न होता है, यह नियम है। जैसे दूध से उत्पन्न दही वर्णादि से सजातीय रहने पर भी अम्लादि गुणों के द्वारा दूध से भिन्न होता है। उसी प्रकार प्रकृति से उत्पन्न महदादि भी प्रकृति के सरूप और विरूप दोनों है।

पाठगत प्रश्न 2.1

1. परिणामत्रैविध्य क्या है?
2. पुरुषबहुत्ववादी कौन हैं?

   (क) नैयायिक (ख) वैशेषिक (ग) वेदान्ति (घ) सांख्य
3. पुरुष बहुत्व को स्वीकार करने के कितने हेतु सांख्यकारिकाकार ने बताए हैं?

   (क) तीन (ख) चार (ग) पाँच (घ) सात
4. पुरुष बहुत्व का प्रतिपादन करने वाली सांख्यकारिका की कारिका कौन-सी है?
5. पुरुष बहुत्व का प्रतिपादन करने वाला सांख्यसूत्र कौन-सा है?
6. मूल प्रकृति क्या है?
7. विषय के विद्यमान होने पर भी प्रत्यक्ष को क्यों नहीं जाना जा सकता है इसके कितने कारण सांख्य कारिका में बताए गये हैं

   (क) पाँच (ख) छ (ग) सात (घ) आठ
8. प्रधानादि का अप्रत्यक्ष कैसे होता है?

   (क) अतिदूरात् (ख) सूक्ष्मात (ग) व्यवधानात् (घ) समानाभिहारात्

ध्यान दें:

2.4) प्रकृति स्वरूप

प्रकृति का स्वरूप

पुरुष तथा प्रकृति ये मूल दो तत्व सांख्य सिद्धान्त में बताए गये हैं। पुरुष स्वयं स्वरूप से सभी प्रकार के विकारों से रहित होता हुआ भी बुद्धितत्व में प्रतिबिम्बित होता हुआ आत्मा का अन्यथा चिन्तन करता हुआ संसार रूपी चक्र में चक्कर लगाता हुआ दु:ख को प्राप्त करता है। सत्व पुरुष से भिन्न है इस ज्ञान से पुरुष की भ्रान्ति दूर हो जाती है तथा बुद्धि धर्म अभिमान का भी तिरोभाव हो जाता है तथा अविवेक रूप बन्धन से मोक्ष मिल जाता है। सत्व पुरुष नहीं है, तथा पुरुष सत्व नहीं है इस प्रकार अन्योन्याभाव प्रतीति ही सत्वपुरुषान्यथा ख्याति कहलाती है। सत्त्व तो यहाँ प्रकृति ही है। प्रकृति तथा पुरुष के भेदज्ञान रूपी विवेक तब सम्भव होता है जब प्रकृति तथा पुरुष का सम्यक् ज्ञान हो जाता है। अर्थात् पुरुष का स्वरूप क्या है? तथा प्रकृति का स्वरूप क्या है? इस ज्ञान के बाद ही प्रकृति तथा पुरुष की भिन्नता का बोध होता है। इसलिए प्रकृति और पुरुष के विवेक लिए प्रकृति के स्वरूप को जानना चाहिए। व्यक्त तथा अव्यक्त के सामान्य धर्म के प्रस्ताव काल में प्रकृति का स्वरूप सांख्य कारिका में बताया गया है।

त्रिगुणमविवेकि विषय: सामान्यमचेतनं प्रसवधर्मि।
व्यक्तं तथा प्रधानं तद्विपरीतस्तथा च पुमान्॥ इति। [सांख्यकारिका-11]

अव्यक्त ही प्रधान है। वही प्रकृति कही जाती है। जितने भी प्रकृति से उत्पन्न हुए हैं उन सभी को अव्यक्त ही मानना चाहिए। प्रकृति त्रिगुणात्मिका है। गुणों की सत्त्व रज तथा तमो अवस्था ही प्रकृति कहलाती है। जैसे की सांख्यसूत्र में कहा गया है। "सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृति:" इति। ये तीनों गुण प्रकृति के धर्म नहीं है अपितु प्रकृति ही त्रिगुणात्मिका होती है। इसलिए कहा गया है कि "सत्वादि गुणों का प्रकृति धर्मत्व नहीं है अपितु क्योंकि वो स्वयं ही प्रकृति स्वरूप है"। प्रकृति कारणरूपा होती है न कि कार्य रूपा। अत: इसको नित्य कहते हैं। यदि प्रकृति कारणान्तर कल्पना करे तो अनवस्था प्रसङ्ग उत्पन्न होता है। क्योंकि कारण के गुण ही कार्य में आते हैं इस नियम के अनुसार प्रकृति से उत्पन्न महदादि व्यक्त भी त्रिगुणात्मक है। जैसे काले धागे से बने हुए वस्त्र भी काले ही होते हैं, वैसे ही। यहां पर इस श्लोक में त्रिगुणं इस पद से सत्वादि गुणों के धर्म सुख, दु:ख, मोह आदि का ग्रहण करना चाहिए न की धर्मी सत्व, रजस, तमस का मूल गुण। धर्मी और धर्म इन दोनों में अभेद होने के कारण सुखादि धर्म ही यहाँ पर गुण शब्द से अभिप्रेत है न कि सत्त्वादि धर्मी। इससे प्रकृति सुख दु:ख तथा मोहात्मक है यह सिद्ध होता है।

अविवेकि व्यक्त-अव्यक्त में धर्म विशेष ही होता है। यहाँ पर अविवेकिता से तात्पर्य सम्भूयकारिता से है। न कि किसी एक पर्याप्त स्वीकार्य से तथा न ही सम्भूय से यहां पर किसी एक से किसी का कुछ भी सम्भव नहीं होता है। अथवा प्रधान स्वयं की विवेचना नहीं करता है इस कारण से भी अविवेकी है। महदादि तत्व भी प्रधान से विवेचित (व्यक्त) नहीं होते हैं इसलिए वे भी अविवेकी ही है। वे गुण यहाँ व्यक्त हैं तथा वे गुण यहाँ अव्यक्त हैं इस प्रकार के विवेक को नहीं कर सकने के कारण व्यक्तादि अव्यक्त तथा अविवेकी है। विषय इस पद से आन्तर विज्ञान प्रधानादि तत्व है यह स्पष्टीकरण नहीं किया गया है। इस विषय पद के अर्थ से केवल बाह्य ग्रहण योग्य भोग्य पदार्थों को ही अङ्गीकृत किया गया है। प्रधान ही सुख दु:खमोह आदि के माध्यम से सभी पुरुषों के द्वारा भोग्य है। प्रधान ही सामान्य है ऐसा कहा जाता है। अनेक पुरुषों के द्वारा ग्रहण होने के कारण वह सामान्य है। जैसे घट पटादि का अनेकों के द्वारा ग्रहण होता है, जैसे नर्तकी के रूपलताभङ्ग आदि का बहुतों के द्वारा प्रत्यक्ष गोचर होता है वैसे ही व्यक्त तथा अव्यक्त इन दोनों का भी बहुपुरुष ग्राह्यत्व के कारण समान ही भाव है, पुरुष बहुत्व होने

ध्यान दें:

के कारण। अव्यक्त प्रधान तथा व्यक्त सभी अचेतन हैं। प्रसवधर्मी तथा व्यक्त व अव्यक्त दोनों का अलग ही धर्म है। बुद्धि से अहङ्कार, उससे इन्द्रियां तथा तन्मात्राएँ, और तन्मात्राओं से सभी भूत उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार प्रधान से भी बुद्धि उत्पन्न होती है। इसलिए दोनों का ही प्रसवधर्मित्व सिद्ध होता है। प्रसवधर्मित्व का अर्थ है परिणामित्व भाव। इस प्रकार से व्यक्त तथा अव्यक्त इन दोनों के साथ विचार प्रसङ्ग में अव्यक्त के जो धर्म यहाँ पर कहे गये हैं। वे सभी प्रकृति के धर्म जानना चाहिए।

2.5) गुणत्रयस्वरूप

तीनों गुणों का स्वरूप

सत्त्व रज तथा तम इन तीनों की साम्य अवस्था ही प्रकृति कहलाती है। प्रश्न होता है कि इन तीनों गुणों का स्वरूप क्या है, तब उत्तर में कहते हैं ये प्रकाश प्रवृत्ति नियम के लिए, प्रीति अप्रीति तथा विषादात्मक तथा अन्य अन्याभिभवाश्रय जनन मिथुनवृत्ति से युक्त होते हैं। इसलिए श्रीमान ईश्वर कृष्ण ने सांख्यकारिका में कहा है कि

प्रीत्यप्रीतिविषादात्मकाः प्रकाशप्रवृत्तिनियमार्थाः।
अन्योऽन्याभिभवाश्रयजननमिथुनवृत्तयश्च गुणाः॥ इति। [12]

गुण सत्व रज तथा तम क्रम से प्रीति अप्रीति विषादात्मक होते है, प्रकाश प्रवृति तथा नियमन करने वाले हैं, ये परस्पर एक-दूसरे का अभिभव, आश्रय, जनन तथा मिथुन वृत्ति वाले होते हैं।

प्रीति अप्रीति तथा विषाद ये आत्मा के भाव स्वरूप होते है। प्रकाश बुद्धि के रूप में दिखाई देता है, प्रवृत्ति यत्न तथा चलन को कहते हैं, नियम प्रकाश तथा क्रियाओं की शून्यता को कहते हैं। अभिभव से तात्पर्य है एक के द्वारा दूसरे को दुर्बल करना। अन्योन्य अभिभवाश्रयमिथुन वृत्ति ये जिनके होते हैं व अन्योन्य अभिभवाश्रयमिथुन वृत्ति युक्त कहलाते हैं। सत्व रज तथा तम ये तीन गुण होते हैं। उनके स्वरूप प्रयोजन तथा क्रिया का इस पद्य के द्वारा प्रतिपादन किया जाता है। सांख्यशास्त्र में तीनों के गुणों का अन्वय प्राप्त होता है। सत्वगुण सुखात्मक होता है, रजोगुण दुःखात्मक होता है तथा तमोगुण मोहात्मक होता है। सत्वादि तीनों गुणों के भाव से आत्म शब्द निर्दिष्ट होता है । प्रीति के अभाव के बिना दुःख नहीं हो सकता तथा उसी प्रकार दुःख के अभाव के बिना प्रीति भी नहीं हो सकती। परस्पर अभावात्मक होने के कारण इनमें परस्पर आश्रयता भी लक्षित होती है। एक की असिद्धि होने से दोनों की असिद्धि हो जाती है।

प्रकाशप्रवृत्ति तथा नियम ही उनके प्रयोजन है। सत्वगुण प्रकाशार्थ है, रजो गुण प्रवृत्ति प्रयोजनात्मक है तथा तमोगुण नियमार्थक होता है। सभी की क्रिया भी अलग अलग प्रकार की कही गयी है। सत्व को बढ़ाकर तथा रज व तम को दबाकर आत्मा शांति को प्राप्त करती है। इसी प्रकार रजोगुण को बढ़ाकर तथा सत्व व तमो गुण को दबाकर आत्मा घोर वृत्ति को प्राप्त करती है और सत्व व रज को दबाकर तथा तमोगुण को बढ़ाकर आत्मा मूढवृत्ति को प्राप्त करती है। यहाँ पर आश्रय शब्द से आधाराधेयता नहीं कही गयी है अपितु मिथ्या साक्षेपत्व कहा गया है। अतः सत्वगुण प्रवृत्ति नियम का आश्रय लेकर के रज तथा तम का उपकार करता है। इसी प्रकार रज तथा तम के विषय में भी जानना चाहिए। इन तीनों में जो अन्य होता है वही सर्वश्रेष्ठ का जनक होता है। इसलिए जनन ही इनका परिणाम है न कि गुणों का सदृश रूप वे भी एक-दूसरे के सहचर होते हुए अविनाश भाववर्ति होते हैं। इसलिए श्रुतियों में कहा गया है कि

अन्योन्यमिथुनाः सर्वे-सर्वे सर्वत्रगामिनः।
रजसो मिथुनं सत्त्वं सत्त्वस्य मिथुनं रजः॥

ध्यान दें:

तमसश्चापि मिथुने ते सत्त्वरजसी उभे।
उभयोः सत्त्वरजसोर्मिथुनं तम उच्यते॥ इति।

इस प्रकार से प्रीति तथा अप्रीति आदि के श्लोक के द्वारा तीनों गुणों के सामान्य स्वरूप के प्रयोजनादि को बताकर के विशेष रूप से गुणों के स्वरूप कथन के लिए कारिका ईश्वर कृष्ण के द्वार प्रस्तुत की जाती है

सत्त्वं लघु प्रकाशकमिष्टमुपष्टम्भकं चलं च रजः।
गुरु वरणकमेव तमः प्रदीपवच्चार्थतो वृत्तिः॥ इति। [१३]

सत्वगुण लघु तथा प्रकाशक होता है, रजो गुण दूसरों को चलाने वाला होता है, तमोगुण भारी तथा दूसरे गुणों को आच्छादित करने वाला होता है। ये गुण परस्पर एक-दूसरे के विरोधी होते हैं। जब रजो गुण क्रियाशील रहता है तब सत्व तथा तम निष्क्रिय रूप में रहते हैं। सत्वप्रकाश तथा तमोगुण अन्धकार वाला होता है। अतः लघु, बड़ा, क्रियाशील, निष्क्रिय, प्रकाश, अन्धकार आदि गुणों के कारण परस्पर विरुद्धधर्म गुणों में पाये जाते हैं। इसलिए इनके द्वार मिलकर के कार्यों की उत्पत्ति आकाशपुष्प की भाँति प्रतीत होती है। क्योंकि ये परस्पर विरुद्ध है। परस्पर विरोधी जब मिलते हैं तो परस्पर विध्वंस अधिक करते हैं। जैसे सुन्द तथा उपसुन्द नाम के दो राक्षस देवताओं की पुत्री के दिव्यमूर्ति के दर्शन से परस्पर लड़ते हुए एक-दूसरे के ऊपर प्रहार करने लगे। वैसे ही परस्पर विरुद्ध स्वभाव गुण वाले यदि मिलते हैं तो वे विनाश को प्राप्त होते हैं। तब कहते कि फिर किस प्रकार से इनकी परस्पर जननमिथुनवृत्ति सिद्ध होती है? तब उत्तर देते हुए कहते हैं कि इनकी परस्पर जननमिथुनवृत्ति दीपकवत् सिद्ध होती है। क्योंकि कार्य का उत्पादन करते समय तीनों गुणों की जो स्वभाव शक्ति होती है वह प्रकाशित होती है, भोक्ता के अदर्शन के प्रभाव से वे परस्पर विरुद्धभाव को त्याग करके एक ही क्रिया का सम्पादन करते हैं। तब कहते हैं कि सम्प्रति संसार परस्पर विरुद्धों के एक साथ अदर्शन के कारण यह कल्पना अवान्तर सिद्ध होती है। तब इसका उत्तर देते हुए कहते हैं कि जैसे रुई की बत्ती आग के द्वारा नष्ट होती है, तेल भी आग द्वारा नष्ट हो जाता है, तथा जलती हुई बत्ती भी यदि तेल से मिल जाती है तो अग्नि नष्ट हो जाती है फिर भी परस्पर विरुद्ध होते हुए तेल बत्ती तथा अग्नि मिलकर के सबको प्रकाशित करते हैं। अग्नि ज्वलनशील तथा लघु होती है, बत्ती तथा तेल जलने में समर्थ तथा गुरुस्वभाव के होते हैं। तेल तरल होता है, तथा बत्ती कठिन होती है। इस प्रकार विरुद्ध स्वभाव के होते हुए भी तेल बत्ती तथा आग के द्वारा एक साथ जलकर प्रकाश को उत्पन्न करने में समर्थ होते हैं तो फिर कैसे सत्व रज तथा तम एकत्र होकर नये को बनाने में समर्थ नहीं हो सकते।

तब कहते हैं कि बत्ती तथा तेल में परस्पर विरोधी धर्म नहीं होता है। बत्ती तेल का शोषण करती है यह सत्य है परन्तु उससे तेल का लय नहीं होता है। उससे तेल तथा बत्ती के परस्पर विरुद्धत्व के अभाव से सत्व रज तथा तमोगुण के साथ तेल बत्ती तथा अग्नि के सामञ्जस्य के अभाव के कारण तथा दृष्टान् व दृष्टान्त की समानता के अभाव से यह उदाहरण सङ्गत नहीं होता है। इस प्रकार की आशङ्का करके वाचस्पतिमिश्र पाद वातपित्त श्लेष्म का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। जैसे वैद्यशास्त्र में वातपित्त तथा श्लेष के भी परस्पर विरुद्ध स्वभाव होते हैं। परन्तु ये मिलकर के शरीर को धारण करती हैं। इन तीनों धातुओं में विषमता होने पर शरीर की रक्षा प्रणाली बिगड़ जाती है। तब पुनः प्रश्न करते हैं कि सत्वागुणों के समभाव में स्थिति के कारण तुल्य बल का प्रसङ्ग आ जाता है। तुल्य बलों के ही परस्पर विरोध होने पर सत्वादि गुणों के ध्वसं होने का आशंका होती है, तब कहते कि ऐसा भी नहीं है, वस्तुतः उनमें तुल्य बल है ही नहीं वे तो गौण प्रधान भाव से रहते हैं, इसलिए ही एक कार्य को सम्पादित करने में समर्थ होते हैं। प्रकाशादि कार्य में सत्वता के प्रधान होने के कारण अलग सहकारी सम्बन्ध होता है तथा प्रवृत्ति गुण रजो प्रधान होने के कारण अलग सहकारिणी उसी प्रकार नियमन भी

ध्यान दें:

तमः प्रधान होने के कारण भिन्न सहकारी धर्म होने वाला है। यहाँ पर वातपित्त के दृष्टान्त में वातपित्त के समभावस्थित से कार्योत्पत्ति के दृष्टान्त में सत्व रज तम के प्रसङ्ग में विषम स्थिति होने से गुणों की कार्योत्पत्ति के दृष्टान्त में विषमता आ जाती है। इसलिए यहाँ पर दीपका का उदाहरण ही सही रहता है। जैसे बत्ती तेल तथा अग्नि परस्पर विरोधी होते हुए दीपक के अन्दर परस्पर सहयोग करते हुए प्रकाशादि रूप कार्य को जन्म देते हैं। इसलिए ही ईश्वरकृष्ण ने दीपक का उदाहरण यहाँ पर दिया है।

पाठगत प्रश्न 2.2

1. सत्व पुरुष की ख्याति किसे कहते हैं?
2. प्रकृति के तीन गुण बताने वाला सांख्य सूत्र कौन-सा है?
3. अविवेकित्व किसे कहते हैं?
4. प्रधान को क्यों सामान्य कहा जाता है?
5. तीनों गुणों के क्या-क्या स्वरूप होते हैं?
6. किस गुण का धर्म प्रकाश होता है?

   (क) सत्त्व का (ख) रज का (ग) तम का
7. गुणों के कितने प्रयोजन होते हैं?

2.6) पुरुष का अकर्तृत्व और बुद्धि का जड़त्व

पुरुष का कर्तृत्व रहित होने पर भी उसमें कर्तृत्व का आरोप किया जाता है। बुद्धि के अचेतन होने पर भी बुद्धि में चेतनत्व का आरोप किया जाता है, इस कारण से पुरुष तथा बुद्धि के भेद का ग्रहण होता है। इसलिए "यह मेरा कर्त्तव्य है" इस प्रकार बुद्धि तथा पुरुष में सम्बन्ध, घटादि विषयक सम्बन्ध तथा वृत्तिज्ञानरूप व्यापार सम्बन्ध इस प्रकार से तीन प्रकार का प्रतीत होता है। वहाँ पर 'मेरा' इस प्रकार से बुद्धि में चेतन पुरुष का सम्बन्ध स्वच्छ दर्पण में मुख के प्रतिबिम्ब के सम्बन्धवत् अत्यन्त स्वच्छ बुद्धि में चेतनपुरुष प्रतिबिम्बवत् प्रतीत होता है। जैसे दर्पण में मुख का कोई वास्तविक सम्बन्ध नहीं होता है वह केवल प्रतिबिम्ब मात्र ही सम्बन्ध होता है, उसी प्रकार स्वच्छ बुद्धि में पुरुष का भी वास्तविक सम्बन्ध नहीं होता है वह भी केवल प्रतिबिम्ब मात्र ही होता है। पुरुष तथा बुद्धि के परस्पर भेद के ग्रहण से इन दोनों का एकत्वाभिमान के कारण बुद्धि में पुरुष सम्बन्ध प्रतीत होता है। 'यह है' इस से बुद्धि में घटादि विषय संबंध भी होता है। वहाँ बुद्धि का चक्षु आदि इन्द्रियों के द्वारा होने वाला 'यह घड़ा' है इस प्रकार के ज्ञान का परिणाम ही घटादि विषयों का बुद्धि में सम्बन्ध कहलाता है। बुद्धि में घटादि विषयों का सम्बन्ध, मुख की श्वास से अभिहत दर्पण में मालिन्य सम्बन्ध के जैसे वास्तविक ही दिखाई देता है। "करना चाहिए" इससे बुद्धि में घटादि विषयों के निश्चयात्मक ज्ञान रूप व्यापार सम्बन्ध होता है। इस प्रकार से "मेरा यहां कर्तव्य है" इस बुद्धि के अभिलापक शब्द से "मेरा" इस पद से पुरुष के साथ तथा "यह" इस पद से विषय के साथ तथा "कर्तव्य" इस पद से व्यापार के साथ सम्बन्ध बुद्धि में होता है। इस प्रकार से तीन प्रकार के सम्बन्ध होने के कारण सम्बन्धत्रायांशवती बुद्धि कहलाती है। वहाँ पर जैसे बुद्धि के साथ चेतन पुरुष का कोई वास्तविक सम्बन्ध नहीं होता है। वैसे ही उसके ज्ञान रूप परिणाम के साथ भी दर्पण में स्थित मालिन्य के साथ मुख के जैसे अवास्तविक ही सम्बन्ध होता है। वह इस प्रकार से केवल वृत्ति रूपी ज्ञान की उपलब्धि नाम से ऐसा कहा जाता है " मैं चेतन कर्ता हूं" ऐसे बुद्धि में आरोपित चेतन पुरुष का तदीयपरिणामरूपवृत्ति के साथ "यह जानता हूं" इस प्रकार का प्रतीत

ध्यान दें:

होता हुआ भी वह उसमें होने वाली वृत्तिज्ञान की उपलब्धि विषय से अवास्तविक सम्बन्ध होता है। इस प्रकार से वृत्ति के ज्ञान के जैसे ही सुख, दु:ख, इच्छा, द्वेष, धर्म, अधर्म आदि संस्कार भी बुद्धि के ही धर्म होते हैं, "सुख पूर्वक मैं करता हूं, "दु:ख पूर्वक मैं कर्ता हूं" इस प्रकार सुखदु:खादि धर्मों के प्रयत्न रूप कार्यों के साथ समानाधिकरण में प्रतीति होती है, धर्मी के अभेद के बिना धर्मों के समाधिकरण की अप्रतीति होती है, इस प्रकार से जैसे प्रयत्न करने पर बुद्धि के धर्म सुख तथा दु:खादि भी बुद्धि के ही धर्म मानना चाहिए।

तब प्रश्न करते हैं कि कार्य करने पर समानाधिकरण के होने से सुखदु:खादि को बुद्धि के ही धर्म मानते हैं, वैसे "मैं चेतन हूं, तथा कर्ता हूं" इस प्रकार चेतन धर्म की भी समानाधिकरण में प्रतीति होने से चेतन धर्म को भी बुद्धि के जैसे मानना चाहिए। तब कहते हैं कि ऐसा नहीं है, क्योंकि बुद्धि के परिणाम से चेतन की अनुपत्ति होती है, परिणाम के जैसे वस्तुओं के भी चेतनत्व का ज्ञान तो मिट्टी आदि से भी उसी की उत्पत्ति होगी। इस प्रकार से यह अनुमान सिद्ध होता है। "बुद्धि चेतना नहीं है परिणामत्वात् मिट्टि के जैसी ही है"। जैसे "मैं चेतन कर्ता हूं" इस अनुभव से "लाल स्फटिक" इस प्रकार की भ्रान्ति होने के कारण बुद्धि में स्थित चेतनांश भ्रान्ति के रूप के जैसा ही है।

2.7) प्रधान : जगत का कर्ता

पुरुष के सङ्ग रहित होने से तथा निर्विकार होने से वह जगत् का कर्ता सम्भव नहीं होता है, सांख्य सिद्धान्त में पुरुष के कर्तृत्व को अङ्गीकार नहीं किया गया है। तो कहते कि पुरुष के अलावा भिन्न कोई ईश्वर भी सांख्य शास्त्र में नहीं जो जगत का कर्ता हो, क्योंकि कर्ता के बिना किसी भी कार्य की उत्पत्ति नहीं होती है इसलिए इस कार्य रूप जगत् का कोई न कोई कर्ता अवश्य मानना चाहिए। वह जगत सांख्य सिद्धान्त में कौन है? तब कहते हैं कि जो स्वतन्त्र हो उत्पत्ति तथा विनाश से रहित नित्य तथा एक अचेतन प्रधान ही जगत का कर्ता है। कर्ता से तात्पर्य है कि कार्य के अनुकूल कृति करने वाला, उस प्रकार का कर्तृत्व प्रधान में नहीं रुकता है, बल्कि वह तो बुद्धि में ही रुकता है। तो कहते हैं कि तो वह प्रधान कर्ता कैसे है, तब कहते हैं कि कर्तृरूपी बुद्धि के उपादानकारणत्व प्रधान में होता है इस कारण से प्रधान में कर्तृत्व कहा जाता है। इस प्रकार कर्तारूपी बुद्धि में उपादान कारणत्व मानने पर वह प्रधान कहलाती है। इस कारण से प्रधान कर्ता के रूप में उसे ही स्वीकारा जाता है। जैसे घटरूप कार्य की अनुकूल कृति मानने पर कर्ता कुलाल होता है उसी प्रकार जगत् रूपी कार्य का कृतित्व बुद्धि में ही होता है न हक प्रधान में सिद्ध होता है। और भी "जिस प्रकार का कार्य होता है उसी प्रकार उसका कारण भी होता है। यह संसार का अव्यभिचरित नियम है। यह त्रिगुणात्मक है, इसलिए इसका कारण भी त्रिगुणात्मक होना चाहिए। इस कारण से भी सिद्धि होता है कि प्रधान ही जगत् का कर्ता है क्योंकि वह त्रिगुणात्मक होता है। जैसे प्रयोग करते हैं कि "यह कार्य रूप जगत् सुख दु:ख तथा मोह में संलग्न है। जो जिसमें संलग्न होता है वह ही उसका कारण होता है। जैसे सोने के आभूषणों में सुवर्ण को होने के कारण उनका सुवर्ण कारण होता है, वैसे ही यह उसका है इस प्रकार से जानना चाहिए।

2.8) परार्थप्रकृति की प्रवृत्ति

प्रकृति में जितनी सभी की प्रवृत्ति है वे स्वार्थ अथवा परार्थ से दृष्टिपथ होती है। प्रकृति तो जड़ है उसकी स्वार्थ तथा परार्थ प्रवृत्ति नहीं होती है फिर भी संसार में परार्थ प्रवृत्ति देखी जाती है। संसार में देखा जाता है कि अचेतन भी प्रयोजन की प्रवृत्ति होता है। जैसे गाय में बछड़े को बढ़ाने वाला दूध भी अचेतन होता है, ऐसे अचेतन प्रकृति भी पुरुष के मोक्ष के लिए प्रवृत्ति होती है। इसलिए सांख्यकारिका में ईश्वर कृष्ण के द्वारा कहा गया है-

ध्यान दें:

वत्सविवृद्धिनिमित्तं क्षीरस्य यथा प्रवृत्तिरज्ञस्य।
पुरुषविमोक्षनिमित्तं तथा प्रवृत्तिः प्रधानस्य॥ इति। [सांख्यकारिका 57]

इसका अर्थ है जैसे अज्ञान वाले अचेतन दूध का भी बछड़े की वृद्धि के निमित्त गाय के बछड़े के पोषण के लिए प्रवृत्ति स्वयं ही उत्पन्न होती है। उसी प्रकार अचेतन प्रधान के पुरुष के मोक्ष के निमित्त प्रवृत्ति स्वयं ही होती है।

उसकी केवल परार्थ ही प्रवृत्ति होती है अपितु स्वार्थ प्रवृत्ति भी देखी जाती है। जैसे लोक में इच्छाओं की निवृत्ति के लिए प्रवृत्ति देखी जाती है वैसे ही प्रधान पुरुष की मोक्ष के लिए प्रवृत्ति देखी जाती है।

इसलिए कहा गया है

औत्सुक्यनिवृत्त्यर्थं यथा क्रियासु प्रवर्तते लोकः।
पुरुषस्य विमोक्षार्थं प्रवर्तते तद्वदव्यक्तम्॥ इति। [सांख्यकारिका 58]

यहाँ पर औत्सुक्यपद का अर्थ इच्छा है, वह ही तीनों गुणों की पर्याप्त वृत्ति है, यह चेतन धर्म न्याय के अनुसार नहीं है। वह इच्छा इच्छित वस्तु की प्राप्ति के बाद निवृत हो जाती है। जैसे किसी पुरुष की इच्छित वस्तुओं को प्राप्त करने की इच्छा होती है तब वह उस वस्तु की प्राप्ति के लिए गमन आगमन रूपी क्रियाओं में प्रवृत्त होता है। जब उसको वह वस्तु प्राप्त हो जाती है तब उसकी निवृत्ति हो जाती है। तो यहाँ पर प्राप्य वस्तु क्या है? तो कहते हैं कि पुरुष का विमोक्ष ही प्रकृति के द्वारा चाहा गया है। इससे ही परार्थ ही प्रकृति की प्रवृत्ति होती है यह जाना गया है, फल के परगत होने के कारण उसमें ही स्वार्थ तुल्यादि भाव होते हैं।

इस प्रकार से प्रकृति तथा पुरुष के विवेक ज्ञान से पुरुष का जब मोक्ष हो जाता है तब प्रकृति स्वयं निवर्तित हो जाती है। इसलिए कहा गया है

रङ्गस्य दर्शयित्वा निवर्तते नर्तकी यथा नृत्यात्।
पुरुषस्य तथाऽऽत्मानं प्रकाश्य विनिवर्तते प्रकृतिः॥ इति। [सांख्यकारिका 59]

जैसे नर्तकी नाट्यशाला में पुरुषों को नृत्य दिखाकर के नृत्य से निवर्तित हो जाती है। वैसे ही प्रकृति भी पुरुष को अपना स्वरूप दिखाकर निवृत हो जाती है।

2.9) ईश्वर

सांख्य दर्शन के मत में ईश्वर सद्भाव के विषय में विद्वानों ने बहुत प्रकार के मतभेद पाये जाते हैं। जैसा कि इस श्लोक में कहा गया है।

सांख्याः निरीश्वराः केचित् केचिदीश्वरदेवताः।
सर्वेषामपि तेषां स्यात्तत्त्वानां पञ्चविंशतिः॥ इति।

(कुछ सांख्य ईश्वर को नहीं मानते कुछ मानते हैं, सभी कुल मिलाकर के पच्चीस तत्वों को ही मानते हैं)

वहाँ ईश्वर को स्वीकार करने के विषय में तथा अस्वीकारने के विषय में बहुत प्रकार की युक्तियाँ हैं ''ईश्वरासिद्धेः" (सांख्यसूत्रम् 1.92) इति "नेश्वराधिष्ठिते फलनिष्पत्तिः कर्मणा तत्सिद्धेः" (5.2) यहाँ से लेकर "सम्बन्धाभावान्नानुमानम्" (5.22) इस सूत्र तक देखने अनेक लोग ऐसा मानते हैं कि सांख्य को स्वीकार करने वाले लोग निरीश्वर हैं। कुछ के मत में सूत्र युक्त सांख्य दर्शन निरीश्वर वादी नहीं हैं। उनके मत में संसार के अधिष्ठाता सब कुछ जानने वाला सभी का कर्ता आदि इन पदों से ईश्वर

ध्यान दें:

अथवा परमात्मा की सिद्धि की गई है। जो इस प्रकार से सूत्र में प्राप्त होता है- "तत्सन्निधानादधिष्ठातृत्वं मणिवत्" (1.96) इति, "स हि सर्ववित् सर्वकर्ता" (3.56) "नेश्वराधिष्ठिते फलसम्पत्तिः कर्मणा तत्सिद्धेः" (5.2)।

वस्तुतः सांख्य दर्शन में जड़ प्रकृति को ही जड़ जगत का उपादान कारण मानते हैं न कि चेतन पुरुष को। लेकिन जगत के अधिष्ठाता के रूप में तथा नियन्ता के रूप में पुरुष को ही स्वीकार करते हैं। सांख्यमत के अनुसार वही पुरुष ईश्वर है न कि और कुछ तत्व। इस प्रकार के पुरुष को वेदान्त में ईश्वर नहीं माना गया है। जड़ जगत का उपादन कारण वे भी चेतन को ही स्वीकार करते हैं तथा वे उसकी सिद्धि के लिए माया रूपी अन्य तत्व की कल्पाना करते हैं। सांख्य तो जगत् के उपादान के रूप में चेतन पुरुष को अङ्गीकार नहीं करते हैं यहाँ तो जड़ प्रकृति को ही अङ्गीकार किया जाता है इसमें कोई असमञ्जस नहीं है, अतः सांख्यकारिका में ईश्वर के विषय में और कुछ नहीं कहा गया है।

पाठगत प्रश्न 2.3

1. बुद्धि में जड़त्व तथा कर्तृत्व कैसे सिद्ध होता है?
2. सांख्य सिद्धान्त के अनुसार जगत के कर्ता कौन है?
3. कर्तृत्व किसे कहते हैं?
4. अचेतन की प्रवृति हेतु कौन-सा दृष्टान्त है?
5. छः आस्तिक दर्शनों में निरीश्वरवादी दर्शन कौन-से कहे गये हैं?

(क) नैयायिक (ख) वैशेषिक (ग) सांख्य (घ) वेदान्ति

पाठ सार

पुरुष तथा प्रकृति इन दोनों के मध्य में जो सम्बन्ध है उसके बारे में पूर्व पाठ में वर्णन किया जा चुका है। इस पाठ में पुरुष बहुत्व का वर्णन किया गया है, जिसमें पुरुष बहुत्व स्वीकार करने में तीन प्रकार के हेतु बताए गये हैं, (1.) जन्म मरण के प्रतिनियम से (2.) एक साथ प्रवृत्ति नहीं होने से, (3.) तीनों गुणों के विपर्यय से। इसमें प्रकति के तत्व की विस्तार पूर्वक आलोचना की गई है। प्रकृति सत्वरज तथा तम की साम्यावस्था है। ये गुण केवल प्रकृति के धर्म ही नहीं है अपितु प्रकृति के स्वरूप भी है। लघुत्व तथा प्रकाशक सत्वगुण का धर्म है, अवष्टम्भकत्व तथा चलत्व रजो गुण के धर्म हैं, गुरुत्व तथा आवरकत्व ये तमो गुण के धर्म है। जैसे दीपक का प्रकाश अग्नि, तेल तथा बत्ती के परस्पर मिलने पर ही सम्भव होता है उसी प्रकार ये गुण भी परस्पर मिलकर ही कार्य करते हैं। न कि एक एक करके। प्रकृति जड़ होने पर भी चेतन पुरुष के सानिध्य से चेतन की तरह ही आचरण करती है। इस कर्तृत्व धर्म प्रकृति की विकारभूता बुद्धि का ही है न कि पुरुष का। वह प्रकृति न तो स्वार्थ के लिए प्रवर्तित होती है और न ही परार्थ के लिए। परार्थ अर्थात् पुरुष का मोक्ष। इस प्रकार से पुरुष का मोक्ष सम्पादित करके प्रकृति स्वयं अपनी प्रवृत्तियों को रोक लेती है। इस मत में ईश्वर स्वीकार करने का प्रयोजन नहीं है।

आपने क्या सीखा

- सांख्य दर्शन में पुरुष बहुत्व के सिद्धान्त की स्वीकार्यता को जाना,

- प्रकृति एवं प्रकृति स्वरूप को जाना,
- प्रधान तत्त्वों को जाना,
- सत्व, रज तथा तम गुणों का विस्तार से परिचय प्राप्त किया,
- पुरुष के चेतनत्व को जाना,
- प्रकृति की प्रवृत्ति किसलिए है यह जाना।

पाठान्त प्रश्न

1. पुरुष बहुत्व साधक हेतओं का विस्तार से वर्णन कीजिए?
2. मूल प्रकृति के विषय में लघु टिप्पणी लिखिए?
3. गुणत्रय के स्वरूप तथा प्रयोजन को विस्तार से प्रतिपादित कीजिए?
4. प्रकृति की प्रवृत्ति किसलिए होती है, इस पर विचार कीजिए?
5. सांख्यमत में पुरुष के अकृतत्व तथा बुद्धि की जड़ता कैसे है, विचार कीजिए?
6. सांख्यमत को स्वीकार किया गया है अथवा नहीं, विचार कीजिए?
7. मूलप्रकृति को स्वीकार करने के क्या मानदण्ड हैं संक्षेप में लिखिए?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 2.1

1. अणुपरिमाण, महत् परिमाण तथा परममहत् परिमाण
2. घ) सांख्य
3. क) तीन
4. जनन मरण कारणों के प्रति नियम से, अयुगपत्प्रवृत्ति से, तीनों गुणों के विपर्यय से पुरुष बहुत्व सिद्ध होता है।
5. 'जन्मादिव्यवस्थातः पुरुषबहुत्वम्' इति
6. मूल प्रकृति ही सत्व रज तथा तमो गुण की साम्यावस्थारूप होती है।
7. आठ कारण होते हैं - 1. अतिदूरात्, 2. सामीप्यात् 3. इन्द्रियघातात् 4. मनोऽनवस्थानात्, 5. सौक्ष्म्यात् 6. व्यवधानात् 7. अभिभवात् 8. समानाभिहारात्।
8. ख) सूक्ष्मता के कारण

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 2.2

1. सत्व पुरुष नहीं होता है तथा पुरुष सत्व नहीं होता है, अन्योन्या भावप्रतीति होने के कारण इसे सत्वपुरुषान्यथा ख्याति कहा जता है।

ध्यान दें:

ध्यान दें:

2. "सत्व रज तथा तम की साम्यावस्था ही प्रकृति कहलाती है।
3. अविवेकिता ही सम्भूयकारिता कहलाती है
4. अनेक पुरुषों के ग्रहण होने के कारण प्रधान सामान्य कहलाता है।
5. तीनों गुण प्रीति अप्रीति तथा विषादात्मक होते हैं।
6. (क) सत्वस्य
7. सत्व का प्रकाश रज का प्रवृति तथा तम का नियमन।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 2.3

1. बुद्धि में चेतन पुरुष का प्रतिबिम्बत्व।
2. प्रधान ही जगत् का कर्ता है।
3. कार्य के अनुकूल कृति।
4. जैसे अचेतन दुग्ध भी बछड़े की वृद्धि के लिए बढ़ता है, इस दृष्टान्त से
5. (ग) सांख्य